THE TIMES OF INDIA

Date: 26-08-17

Battle half won

Triple talaq petitioner's struggle continues

TOI Editorials

It was brave of Shayara Bano, Ishrat Jahan, Aafreen Rehman, Gulshan Parveen and Atiya Sabri to petition India's apex court against instant triple talaq, because it meant going against powerful male authorities in the community. This week they won a great victory in court. But its euphoria is tempered by ground realities, where reform will take more time and enlightenment – and perhaps pain.Over in Kolkata for example Ishrat Jahan is battling a social boycott. The SC verdict has opened floodgates of expletives against her: like gandi aurat (dirty woman), enemy of men, un-Islamic. Her lawyer Nazia Ilahi Khan is being trolled online. But even as Ishrat is learning that the court judgment will not change society by itself, she is refusing to get dispirited. She has decided to remove her niqab, to say to other women that she is not a victim anymore and every ordinary woman can fight for her rights like her, to push for change within the community.Bengal minister Siddiqullah Chowdhury has meanwhile declared the SC verdict unconstitutional, actually urging Muslims not to abide by it. This is beyond irresponsible, pandering to fundamentalism and oppression of women as it does. Interestingly, even as SC has set aside talaq-e-biddat, there is no gender equality in talaq-e-ahsan and talaq-e-hasan either. Women will demand greater agency over time. Such demands will grow across religions, and successfully. Defending the sexist status quo or suppressing women's voices is a medieval game.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 26-08-17

Address the social malaise behind him

ET Editorials

The ability of the Indian state to uphold the rule of law was put to the test on Friday, when masses of Dera Sacha Sauda chief Gurmeet Ram Rahim Singh's followers went on a rampage after his conviction for rape of two women in his monastery 15 years ago. The law enforcement agencies of the state could not be said to have come out with flying colours, but they did manage to arrest the godman and whisk him away to jail and are using force, at the time of writing, to control violent mobs who have set fire to trains and other vehicles. It could be argued that Haryana police should have taken proactive measures to prevent Dera followers from congregating in Panchkula, where the court that tried the godman is located. But, in

practice, it is not easy to uphold people's right to move freely within the country and selectively prevent the movement of select groups of would-be arsonists.The larger question is what, in modern India, allows hundreds of thousands of ordinary people to surrender rational thought and considerations of natural justice before blind loyalty to a figure who lives a flamboyant, luxurious lifestyle at the expense of mostly poor followers. Another godman's followers had created a similar ruckus in Haryana when the law caught up with his misdeeds, more than two years ago. This social malaise must be identified and addressed.It does not help that political parties find it convenient to woo such godmen at the time of elections to win crucial additional votes. This makes entire governments beholden to such exploiters of popular vulnerabilities and embolden them to think they are above the law. When politicians take such shortcuts to power, ordinary people pay the price by way of having their vehicles burned and their lives disrupted by violent protests.The saving grace is that the law does work, even if at a snail's pace. A man who arrogated to himself divine powers to bed or castrate followers as he chose has been convicted by the temporal institution of the courts. The court is right in ordering attachment of his properties to make good the damage wrought by his supporters. More importantly, society must be rid of the ills that produce such godmen.

दैनिक भास्कर

Date:26-08-17

क्या ट्रम्प नई अफगान नीति पर कायम रहेंगे?

वेद प्रताप वैदिक

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प अफगानिस्तान के बारे में अपनी नई नीति लागू कर पाए तो अफगानिस्तान ही नहीं, पूरे दक्षिण एशिया की शक्ल बदल जाएगी। इसके पहले तक अमेरिका की हर सरकार ने पाकिस्तान को अपने क्षुद्र स्वार्थों का मोहरा बनाया। पहले सोवियत संघ के खिलाफ और बाद में अफगानिस्तान को काबू में करने के लिए इस्तेमाल किया। अमेरिका ने आंख मंूदकर फौजी-वित्तीय मदद दी और पाकिस्तान उसका इस्तेमाल भारत के विरुद्ध करता रहा। इसीलिए पिछले 70 साल में दक्षिण एशिया न तो संपन्न बन सका और न सशक्त। खुद पाकिस्तान उद्दंड राज्य में बदल गया।ट्रम्प ऐसे पहले अमेरिकी राष्ट्रपति हैं, जिन्होंने खुलेआम पाकिस्तान को आतंक का गढ़ कहते हुए साफ-साफ कहा है कि यदि आतंकियों के खिलाफ वह तुरंत कार्रवाई नहीं करेगा तो अमेरिका उसके खिलाफ फौजी और आर्थिक कठोर कदम उठाएगा। यहां हम यह न भूलें कि पिछले 40 साल से कभी मुजाहिदीन, कभी तालिबान, कभी अल-कायदा, कभी इस्लामी राज्य और कभी-कभी स्थानीय अनाम गिरोहों को अमेरिका ने पाकिस्तान के माध्यम से सहायता दी है। यदि ट्रम्प ने पाकिस्तान का हुक्का-पानी बंद कर दिया तो इन अराजक तत्वों का दम अपने आप घुट जाएगा। काबुल में अमेरिका के राजदूत रहे जलमई खलीलजाद की राय है कि अमेरिका पाकिस्तान को दी जा रही सारी आर्थिक मदद एकदम बंद कर दे और आतंकी शिविरों पर तुरंत हमला बोल दे। वैसे राष्ट्रपति बनने के पहले ट्रम्प ने अफगानिस्तान से एक-एक अमेरिकी फौजी को तुरंत वापस बुलाने की मांग कई बार की थी। अब उन्होंने राष्ट्रपति बनते ही अपनी ही नीतियां उलट दीं। यही काम उन्होंने सऊदी अरब और चीन के बारे में भी किया। उम्मीद है वे अब नई अफगान-नीति पर टिके रहेंगे।ट्रम्प की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि उन्होंने

अफगानिस्तान में भारत की भूमिका को खुलेआम रेखांकित कर कहा कि अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में भारत सक्रिय भूमिका निभाए। पाकिस्तान के साथ अमेरिका की इतनी तगड़ी सांठगांठ रही है कि वह अफगानिस्तान में भारत का नाम लेना भी ठीक नहीं समझता था लेकिन, भारत को एक खास भूमिका देकर ट्रम्प ने पाकिस्तान के घावों पर नमक छिड़क दिया है। पाकिस्तान को इतनी मिर्ची लगी है कि वहां से भारत की दखलंदाजी के विरुद्ध बयान भी आने लगे हैं। भारत ने अफगानिस्तान में 2 अरब डॉलर से ज्यादा खर्च कर दिए हैं। लेकिन ट्रम्प ने भारत से कहा है कि वह भारत-अमेरिका व्यापार से करोड़ों डॉलर कमाता है, इसीलिए वह अफगानिस्तान में अपना पैसा लगाए। ट्रम्प के मुंह से यह बात शोभा नहीं देती लेकिन, ट्रम्प तो ट्रम्प हैं। ट्रम्प ने साथ-साथ यह भी कह दिया कि अब अमेरिका अफगानिस्तान में पैसा नहीं लगाएगा। सिर्फ फौजी कार्रवाई करेगा। ट्रम्प से कोई पूछे कि यदि अफगानिस्तान में लोग भूखे मरेंगे तो वे किसी भी सरकार को क्यों चलने देंगे और यदि नौजवान बेरोजगार होंगे तो वे तालिबानी फौज में भर्ती क्यों नहीं होंगे? यह ठीक है कि पिछले 17 साल में अमेरिका वहां 800 अरब डॉलर खर्च कर चुका है लेकिन, इसकी ज्यादातर राशि तो अमेरिकी कंपनियों की जेबों में ही चली गई है। जो पैसा पाकिस्तान को दिया जा रहा था, वह अब अफगानिस्तान को दे और अमेरिकी पैसे से यदि भारतीय कंपनियां वहां काम करेंगी तो अमेरिकी कंपनियों के मुकाबले उनकी सफलता कम से कम चौगुनी होगी।

ट्रम्प ने ओबामा की नीति उलटते हुए यह ठीक ही कहा कि अफगानिस्तान में अमेरिकी फौजों की न तो समय-सीमा होगी और न ही संख्या-सीमा होगी। ट्रम्प को शायद अभी ठीक से अंदाज नहीं है कि 8400 अमेरिकी सैनिक तो आटे में नमक के बराबर भी नहीं हैं। उनकी संख्या अगर दस गुनी हो जाए तो सारा मामला साल-दो साल में ही ठीक हो सकता है। एक तो पाकिस्तान पर लगाम लगने से आतंकियों की कमर टूट जाएगी और फिर अफगान सेना में घुसे विघ्नसंतोषियों से भी छुटकारा मिलेगा। अमेरिका अफगानिस्तान में भारत-पाकिस्तान के साथ मिलकर एक संयुक्त फौजी कमान बनाए, जो यदि ईमानदारी से काम कर सकी तो दक्षिण एशिया का नक्शा ही बदल जाएगा। अफगानिस्तान में थोड़ी स्थिरता बढ़ते ही तालिबान आदि असंतुष्ट तत्वों के साथ सार्थक बातचीत चलाना भी आसान हो जाएगा। यदि ट्रम्प ने सावधानी और दूरदर्शिता से काम नहीं लिया तो यह मामला और भी बिगड़ सकता है। रूस और चीन दोनों मिलकर पाकिस्तान की पीठ ठोक सकते हैं। ओबामा से चिढ़ा हुआ ईरान भी उनका साथ दे सकता है। इन राष्ट्रों का तालिबान से इधर संपर्क बढ़ता चला जा रहा है। तालिबान का संपर्क कुछ अरब राष्ट्रों के साथ पहले से है। पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री शाहिद खाकान अब्बासी सऊदी अरब के दरबार में गुहार लगाने रियाद पहुंच गए हैं। अमेरिकी असहयोग कितना भयावह हो सकता है, इसका अंदाज सबसे ज्यादा फौज को ही होगा। सेनापति कमर जावेद बाजवा इस्लामाबाद स्थित अमेरिकी राजदूत डेविड हाल से भी मिल आए हैं।ट्रम्प प्रशासन को पाकिस्तानी फौज को साफ-साफ बताना होगा कि वह आतंकवाद बर्दाश्त नहीं करेगा, चाहे वह अफगानिस्तान के खिलाफ हो या भारत के खिलाफ। ट्रम्प में यदि कूटनीतिक होशयारी हो तो वे चीन में उइगर आतंकवाद और रूस से मध्य एशियाई मुस्लिम राष्ट्रों में चल रहे आतंकवाद के बारे में भी बात करेंगे। जैसे सीरिया में रूस और अमेरिका मिलकर आईएसआईएस का मुकाबला कर रहे हैं, वैसा ही कोई अंतरराष्ट्रीय तंत्र दक्षिण एशिया में भी खड़ा किया जाना चाहिए। चीन को भारत को दिया गया महत्व अटपटा लगा है लेकिन, वह अपने लिए भी भूमिका चाह रहा है।अफगानिस्तान में सफल होने के लिए विदेशी शक्तियों को एक बुनियादी बात हमेशा ध्यान में रखनी होगी। अफगान लोग स्वभाव से ही आज़ाद लोग हैं। हर अफगान अपने आप में सप्रम्भु होता है। कोई विदेशी शासक कितना ही सबल, कितना ही शक्तिशाली, कितना ही क्रूर हो, वह अफगानिस्तान में टिक नहीं सकता। अफगानिस्तान दो बड़े साम्राज्यों की कब्रगाह पहले से ही है- ब्रिटिश और सोवियत। मुझे विश्वास है कि बड़बोले ट्रम्प के सलाहकार अमेरिका को उसी खाई में नहीं खिसकाएंगे, जिसमें पहले से दो साम्राज्य दफन हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:26-08-17

मालदीव के साथ रिश्तों के नए तार जोडऩे का प्रयास

आदिति फडणीस

मालदीव के राष्ट्रपति पद से बेदखल किए जाने के बाद मोहम्मद नशीद इन दिनों निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मालदीव को बहुदलीय लोकतंत्र की तरफ प्रेरित करने वाले नशीद इसी हफ्ते भारत आए थे। मालदीव में राजनीतिक झंझावातों की वजह से सभी भारतीयों को फिक्रमंद होना चाहिए।वर्ष 2008 तक मालदीव में केवल एक ही पार्टी का शासन चलता रहा। कार्यपालिका के पास लोक सेवा, सुरक्षाबलों और न्यायपालिका का भी नियंत्रण होता था। संवैधानिक रूप से सांसद नियुक्त करने का भी अधिकार होने से कार्यपालिका संसद पर भी अपना नियंत्रण रखती थी। इस व्यवस्था में मौमून अब्दुल गयूम इस द्वीपीय देश पर करीब 30 वर्षों तक शासन करते रहे।लेकिन मोहम्मद नशीद ने मालदीव के राजनीतिक परिदृश्य पर कदम रखने के बाद इस पूरी व्यवस्था को ही चुनौती दी। मालदीव डेमोक्रेटिक पार्टी (एमडीपी) के बैनर तले उन्होंने वर्ष 2008 में राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ा और 54 फीसदी मतों के साथ विजयी रहे। उनके नेतृत्व में देश के लिए नया संविधान भी लिखा गया लेकिन 2012 में नशीद का तख्ता पलट दिया गया। सेना की मदद से नशीद को न सिर्फ शासन से हटाया गया बल्कि उन्हें घर में नजरबंद भी कर दिया गया। इस घटना के एक साल बाद जब मालदीव में नए राष्ट्रपति चुनाव हुए तो पूर्व राष्ट्रपति गयूम के सौतेले भाई अब्दुल्ला यमीन को जीत मिली। हालांकि नशीद के समर्थकों ने उस चुनाव में बड़े पैमाने पर धांधली होने के आरोप लगाए थे। यमीन की जीत का ऐलान होने के कुछ घंटे बाद ही नशीद ने माले स्थित भारतीय उच्चायोग में शरण मांगी थी। बहरहाल नशीद को नौ महीनों तक जेल में रहना पड़ा। इस दौरान उन पर मुकदमा चलाकर आतंकवाद में संलिप्त करार दिया गया और 13 साल के कारावास की सजा भी सुनाई गई। नशीद ने सर्जरी के लिए ब्रिटेन जाने की इजाजत मांगी और वहां पहुंचकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार से शरणार्थी दर्जा देने की अपील की जिसे स्वीकार कर लिया गया। अगर वह मालदीव लौटते हैं तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाएगा ताकि बची हुई सजा पूरी की जा सके।नशीद के बाहर रहने से एमडीपी के शीर्ष पर एक तरह से रिक्तता की स्थिति पैदा हो गई। इस बीच यमीन ने अंतरराष्ट्रीय मोर्चे पर गतिविधियां तेज कर दी। यमीन को यह लग रहा था कि विदेश नीति के मामले में सक्रिय होने से अगर उनकी अपनी स्थिति को लेकर कोई खतरा पैदा होता है तो विदेशी ताकतें उनकी मदद के लिए आगे आएंगी। चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने सितंबर 2014 में मालदीव की यात्रा कर भारत को क्षेत्रीय शक्ति संतुलन के बारे में संदेश देने की कोशिश की थी। विशाल प्रतिनिधिमंडल के साथ पहुंचे शी चिनफिंग ने चीन और मालदीव के बीच मैरिटाइम सिल्क रोड बनाने का विचार रखा था। इस परियोजना को पूरा करने के लिए जमीन की जरूरत थी लिहाजा मालदीव के संविधान में विदेशी नागरिकों को भी जमीन खरीदने की इजाजत दे दी गई। यह प्रावधान किया गया कि एक अरब डॉलर से अधिक निवेश करने वाला कोई भी विदेशी नागरिक इस परियोजना के तहत जमीन खरीद सकता है लेकिन शर्त यह थी कि कम-से-कम 70 फीसदी हिस्सा समंदर को सूखा कर हासिल करना होगा। अब चीन के पर्यटक मालदीव का रुख करने लगे हैं।मालदीव और चीन के बीच हुए समझौतों ने भारत की चिंताएं बढ़ा दी थीं। इस बीच मालदीव ने अपने मुख्य एयरपोर्ट के विकास के लिए चीन को न्योता देकर बढ़ती नजदीकी का सबूत दिया है। हैवन एयरपोर्ट के विकास का ठेका पहले भारतीय कंपनी जीएमआर को मिला था लेकिन बाद में मालदीव सरकार ने उसे निरस्त कर दिया था। जीएमआर ने उस फैसले को अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता पंचाट में चुनौती भी दी। यह बात ध्यान में रखने लायक है कि जीएमआर को यह ठेका नशीद के समय मिला था लेकिन सत्ता से उनके बहने के बाद उस ठेके को निरस्त कर दिया गया।मौजूदा राष्ट्रपति यमीन वर्ष 2016 में भारत के दौरे पर आए थे। यमीन को अपने यहां बुलाकर भारत ने नशीद के प्रति झुकाव वाला रुख बदलने की कोशिश की थी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और राष्ट्रपति यमीन ने एक रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसे कूटनीतिक हलकों में एक

नाटकीय बदलाव के तौर पर देखा गया। उसके महज एक साल पहले भारत नशीद का तख्तापलट करने का आरोप लगाते हुए मालदीव को राष्ट्रमंडल देशों के संगठन से प्रतिबंधित कराने की मुहिम में लगा हुआ था। परेशान होकर यमीन ने राष्ट्रमंडल से खुद को अलग कर लिया था। मालदीव को लेकर केवल भारत और चीन ही पसोपेश में नहीं हैं। मालदीव एक सुन्नी-बहुल इस्लामिक गणतंत्र है लेकिन पश्चिम एशिया में उसकी उपस्थिति कुछ समय पहले तक नदारद थी। रियाद में मालदीव का दूतावास 2014 में जाकर खुला जो पश्चिम एशिया के किसी भी देश में उसका पहला दूतावास था। सऊदी अरब ने भी विदेशी नागरिकों को जमीन खरीदने की इजाजत मिलने के बाद मालदीव में रुचि लेनी शुरू कर दी है। इसके चलते मालदीव के फाफू एटॉल द्वीप को सऊदी अरब के सुपुर्द किए जाने की चर्चाएं भी जोर पकडऩे लगी हैं। यमीन ने सऊदी अरब की यात्रा के बाद कहा था कि दोनों देशों के कूटनीतिक रिश्ते अपने शिखर पर हैं। हालांकि सऊदी अरब की संलिप्तता बढऩे का एक खतरा यह है कि मालदीव की युवा पीढ़ी कट्टरपंथ का रुख कर सकती है। ऐसी खबरें हैं कि मालदीव के सैकड़ों युवा आईएसआईएस का हिस्सा बनने के लिए सीरिया पहुंच चुके हैं। अलकायदा से संबंध रखने के आरोप में गुआंतानेमो बे जेल में बंद रहा इब्राहिम फौजी अब बाहर आने के बाद माले में इस्लामिक फाउंडेशन चला रहा है। मालदीव में अभी तक नेताओं और उद्योगपतियों ने इस्लामी धर्मगुरुओं को राजनीति में प्रभावी भूमिका में आने से रोके रखा है। लेकिन 2018 में होने वाले राष्ट्रपति चुनावों को देखते हुए भारत भी वहां के हालात पर नजदीकी नजर बनाए रखेगा।

नईदुनिया

Date:26-08-17

निजता के मूल अधिकार बनने का मतलब

विराग गुप्ता

सुप्रीम कोर्ट के नौ जजों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से प्राइवेसी यानी निजता के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत जीवन के अधिकार का हिस्सा मानकर एक नया इतिहास रच दिया है। निजता के अधिकार को मूल अधिकार करार देने के निर्णय के बाद उस फैसले का इंतजार है जो अनेक योजनाओं में आधार को अनिवार्य बनाए जाने के मामले में आना है। इस मामले की सुनवाई सुप्रीम कोर्ट की पांच सदस्यीय पीठ कर रही है। दरअसल जब इसी मामले की सुनवाई के दौरान निजता के अधिकार के मूल अधिकार होने-न होने का सवाल उठा तब मामला नौ सदस्यीय पीठ को सौंपा गया। इतनी बड़ी पीठ इसलिए बनानी पड़ी, क्योंकि पहले छह और आठ सदस्यीय पीठ निजता के अधिकार को मूल अधिकार न मानने का फैसला दे चुकी थीं।

इस नौ सदस्यीय पीठ के सामने बड़ा सवाल यही था कि क्या निजता का अधिकार संविधान के तहत मौलिक अधिकार है और क्या मौलिक अधिकार का उल्लघंन होने पर लोग उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय से न्याय की गुहार लगा सकते हैं? शीर्ष अदालत ने इसके पहले अनेक फैसलों के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, जल्द न्याय, स्वस्थ्य पर्यावरण एवं भोजन को जीवन के अधिकार के तहत परिभाषित किया था। शीर्ष अदालत के इस फैसले में 1954 के खड़कसिंह और 1962 के एमपी शर्मा के पुराने फैसलों को पलटने का भी

काम किया गया है। इन पुराने फैसलों में सरकार को राष्ट्रीय सुरक्षा और अपराध रोकने के लिए सरकार के विशेषाधिकारों को सही ठहराते हुए सुप्रीम कोर्ट ने निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार नहीं माना था। हालांकि इसके बावजूद उसके अनेक फैसलों में प्राइवेसी को हमेशा ही संवैधानिक अधिकार माना गया। चूंकि नवीनतम फैसले में निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार मानने के बावजूद सरकार के विशेष अधिकारों को माना गया है इसलिए यह सवाल उठ सकता है कि आखिर पुराने फैसलों को किस हद तक गलत माना जा सकता है? चूंकि जनता के कल्याण के लिए सरकार को अपने स्तर पर कदम उठाने का अधिकार प्राप्त है इसलिए इस फैसले के बाद उसके ऐसे कदमों को इस कसौटी पर कसा जा सकता है कि कहीं वे मूल अधिकार बन गए निजता के अधिकार का हनन तो नहीं करते?

यदि सरकार के ऐसे कदमों को चुनौती दी गई तो उसकी अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन पर सवालिया निशान भी लग सकते हैं? शीर्ष अदालत के नवीनतम फैसले में राष्ट्रीय सुरक्षा, अपराध रोकने एवं कल्याणकारी योजनाओं के लिए सरकार की भूमिका को प्राइवेसी का उल्लघंन नहीं माना गया है, लेकिन इस फैसले के बाद सरकार अब किसी नागरिक को निजी जानकारी देने के लिए बेवजह बाध्य नहीं कर सकती। इस फैसले के बाद सरकार द्वारा जनता की निजी जानकारी का अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल गैर-कानूनी माना जा सकता है। निजता पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद सरकार को कई कानूनों में बदलाव करने पड़ सकते हैं। शीर्ष अदालत में सुनवाई के दौरान लोगों के निजी डाटा की सुरक्षा का सवाल भी सामने आया। शीर्ष अदालत के इस फैसले को सही तरह लागू करने के लिए इंटरनेट कंपनियों को अपने सर्वर्स भारत में स्थापित करने पड़ सकते है।

यह सही सवाल उठाया जा रहा है कि आखिर डिजिटल युग में निजी कंपनियों द्वारा निजता के उल्लघंन पर रोक कैसे लगेगी? स्मार्ट-फोन और सोशल मीडिया के दौर में लोगों की व्यक्तिगत जानकारी इंटरनेट कंपनियों के माध्यम से बाजार के हवाले हो जाती है। सरकार द्वारा डेटा सुरक्षा के मामले पर कानून बनाने के लिए पूर्व न्यायाधीश श्रीकृष्णा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया है। डिजिटल इंडिया के विस्तार के बाद डेटा सुरक्षा पर सरकार द्वारा इस समिति का गठन देरी से उठाया गया कदम माना जा रहा है। किसी अधिकार के मूल अधिकार में आने का मतलब है कि उसमें छेड़छाड़ नहीं की जा सकती। 1973 में सुप्रीम कोर्ट की 13 जजों की बेंच ने सात जजों के बहुमत से केशवानंद भारती मामले में यह फैसला दिया था कि मौलिक अधिकार संविधान के मूल ढांचे के तहत आते हैं जिन्हें संसद भी नहीं बदल सकती। अगर कोई सरकार संसद के जरिये ऐसा करे भी तो शीर्ष अदालत उसे रद कर सकती है।

जजों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रीय आयोग बनाने के लिए संविधान संशोधन के जरिये संसद ने कानून बनाया था जिसे सुप्रीम कोर्ट ने अक्टूबर 2015 में रद कर दिया था। ऐसा तब हुआ था जब दोनों सदनों ने सर्व सम्मति से यह कानून बनाया था। सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में यह दलील दी गई थी कि कॉमन लॉ के तहत प्राइवेसी का कानून है पर इसे मौलिक अधिकार नहीं माना जा सकता। सरकार के अनुसार भारत विकासशील देश है जहां कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने के लिए सरकार को सक्रिय भूमिका निभानी पड़ती है। आधार और अन्य योजनाओं में लोगों की निजता को सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त कानूनों का सरकार ने हमेशा दावा तो किया है,

लेकिन उसके दावे पर सवाल उठते रहे हैं। सरकार द्वारा आधार, वोटर कार्ड, पासपोर्ट, ड्राइविंग लाइसेंस, इनकम टैक्स, बैंक खाते खोलने एवं अन्य अनेक योजनाओं के लिए जनता की निजी जानकारी एकत्रित की जाती है। निजता के अधिकार के मूल अधिकार बन जाने के बाद सरकार पर इस जानकारी का सही तरह रख-रखाव करने की जिम्मेदारी बढ़ जाएगी। इस फैसले का असर समलैंगिकता संबंधी कानून पर भी पड़ सकता है।प्राइवेसी का अधिकार देश के हर नागरिक को प्रभावित करता है। उस पर दलगत हितों वाली राजनीति होना दु:खद है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले को अमल में लाने के लिए राजनीति के अलावा अनेक व्यावहारिक चुनौतियां आ सकती हैं, जिन्हें राजनीतिक सहयोग से ही हल किया जा सकता है। अभी यह देखना शेष है कि क्या सरकार शीर्ष अदालत द्वारा दिए गए फैसलों के अनुरूप प्राइवेसी पर प्रतिबंधों और अपवादों को परिभाषित करेगी, क्योंकि कोई भी मूल अधिकार असीमित नहीं हो सकता।

आधार को केंद्र में रखकर डिजिटल इंडिया और गर्वनेंस की अन्य योजनाओं का शीर्ष अदालत के फैसले का क्या प्रभाव पड़ेगा, यह आधार पर फैसला आने के बाद ही पता चलेगा, लेकिन सरकार के सामने यह चुनौती तो है ही कि निजी क्षेत्र और विशेष रूप से डिजिटल कंपनियों पर यह लगाम कैसे लगे कि वे लोगों की निजी जानकारी अन्य किसी को न दें? तकनीक के इस दौर में ऐसे सवालों का सही जवाब नहीं दिया जा सका तो प्राइवेसी पर शीर्ष अदालत का फैसला कानून के जंजाल में एक और रिसर्च पेपर बनकर रह जाएगा। वैसे यह उल्लेखनीय है कि निजता के अधिकार पर फैसला देने वाली नौ सदस्यीय संविधान पीठ में शामिल जज डीवाई चंद्रचूड़ ने आपातकाल के दौरान एडीएम जबलपुर मामले में अपने पिता वीवाई चंद्रचूड़ द्वारा दिए गए फैसले को उलट कर न्यायिक गरिमा की एक नई मिसाल पेश की है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date:25-08-17

Right to Privacy: A right for the future

Supreme Court upholds right of individuals to choose how and where they want to live and work, and pursue their dreams

ARVIND P. DATAR

Thursday morning, a bench of nine judges delivered a landmark 550-page ruling that will have far-reaching consequences for many decades to come. Although six judges delivered separate judgments, it was unanimously held that the right to privacy is protected as an "intrinsic part of the right to life and right to personal liberty under Article 21" and also as a part of the other freedoms guaranteed in the chapter of fundamental rights.This unanimous verdict has rejected the claim of the Union of India that the citizens of India did not have a fundamental right to privacy and that there was, at best, a common law right. This startling claim was based on two judgments of the Supreme Court, one in 1954 by an eight-judge bench and the other, in 1962, by a six-judge bench.In 1954, various offices of the Dalmia group were searched and this was claimed to be unconstitutional. While disposing this untenable plea, the Supreme Court made a passing observation that the Indian Constitution did not provide for a fundamental right to privacy, analogous to the Fourth Amendment to the US Constitution.This amendment, made in 1789, prohibited unauthorised searches of a person's home. The observations on privacy did not really amount to a categorical ruling that there was no right to privacy. Since this was a decision of eight judges, a bench of nine judges had to be set up to decide the question of whether the right to privacy was indeed a fundamental right.

In 1962, a six-judge bench of the Supreme Court had to consider the validity of certain rules of Uttar Pradesh, which permitted the police to undertake picketing, surveillance, maintain records of the movement of history-sheeters and make "domiciliary visits at night". The Supreme Court upheld these powers except the last one: Such nightly visits were held to be constitutionally impermissible. This judgment also contained a observation that there was no fundamental right to privacy. But this was not the issue before the Supreme Court. Mercifully, both these judgments have now been expressly overruled Thursday by the nine-judge bench.In 1975, Justice K.K. Mathew

made important observations on the right to privacy after noting the rapid expansion of the scope of the right to privacy by the US Supreme Court. In 1928, the US Supreme Court had held that wire-tapping of phones was permissible because this did not amount to an unlawful search of a person's "home". In this judgment, the court restricted privacy to the physical level — the home of a person. In a powerful dissent, Justice Brandeis ruled that privacy was much more that just ruling that a man's home is his castle. With technological advances, the right to privacy would expand. The right to privacy, he famously held, was the right to be left alone.The contours of the right to privacy rapidly expanded in the United States. Laws relating to the sale of condoms to married and unmarried couples were struck down as violating the right to privacy, protecting not only what happens in a bedroom but also decisional autonomy — an individual's right to procreation. In 1973 came the classic judgment of Roe v. Wade, which dealt with the controversial issue of abortion. Later decisions struck down laws that permitted compulsory sterilisation of criminals and which punished reading pornographic literature in the privacy of men's home.

Justice Mathew noticed this vastly expanded scope of the right to privacy and noted that the founders of the Constitution wanted to ensure conditions favourable to the pursuit of happiness. He rightly held that the right to privacy could be curtailed only when there was "compelling State interest".Over the last 40 years, the Supreme Court has repeatedly protected citizens against unwarranted intrusion into his right to privacy. For example, the compulsory injection of truth serum, as a part of narco-analysis, was struck down by a bench of five judges. At the same time, the communication of the HIV positive state of a person to his fiancée was held to be valid: His right to privacy did not mean that he could endanger the life of his future wife.Indeed, there are more than 25 judgments that have examined laws that violated the right to privacy. In this background, it was indeed strange that the Union of India should seriously argue that there was no fundamental right to privacy.The right to privacy broadly encompasses physical privacy, informational privacy and decisional autonomy. The interplay of technological advances and the right to privacy in the digital age needs to be closely scrutinised. The nine-judge bench has rightly emphasised the need for data protection laws — a task now entrusted, at a preliminary stage, to the Justice Srikrishna Committee.What the future holds for us, we know not. But, irrespective of any technological changes, the respect of the right of individuals to make a choice of how and where they want to live, work and pursue their individual dreams must be protected. Nine judges of the Supreme Court have protected, for decades to come, the most important right emphasised by Justice Brandeis: The right to be left alone

---

Date:25-08-17

Fundamental rights redefined

From seeing them as distinct compartments against which to test laws, to understanding them as a cumulative whole, to now seeing them as boundaries which guarantee the dignity of a free individual in a modern republic, the courts have come a long way.

Alok Prasanna Kumar

The right to privacy is not just a common law right, not just a legal right, not just a fundamental right under the Constitution. It is a natural right inherent in every individual. This, in sum, is the law laid down by a nine-judge bench of the Supreme Court of India in K. Puttaswamy v Union of India. This finding of the Supreme Court has not come out of the blue. It is the inevitable conclusion of steady developments in the law in the last three decades where courts across the country, not just the apex court, have said that the

right to privacy, to choose, to be free of unwanted intrusion and to determine what happens to their information, is a fundamental right under the Constitution. The judgment has consolidated the development of the law into a grand judgment of six concurring opinions that definitively lays down these principles.The judgment is also part of the changing view of the Supreme Court on what are fundamental rights. From seeing them as distinct compartments against which to test laws (in A.K. Gopalan v State of Madras in 1950) to understanding them as a cumulative whole (Maneka Gandhi v Union of India) to now seeing them as boundaries which guarantee the dignity of a free individual in a modern republic, the courts have come a long way. Reading the right to privacy into each and every one of the fundamental rights in the Indian Constitution has meant that the scope and depth of these rights have been expanded. They have also taken the opportunity to definitely renounce the disgraceful majority judgment in ADM Jabalpur v S.S. Shukla, delivered at the height of the Emergency, which allowed the government to extinguish such rights at will.The judgment also puts an end to some pernicious myths about the right to privacy. The six opinions delivered by the judges between them go to great lengths to point out that the right to privacy is not an elitist concern, not just a modern myth, or entirely irrelevant in the internet age. They have rejected any notion that the right to privacy is an impediment to social welfare in any way, and the idea that those who seek socio-economic security do not care about their civil and political rights.Three elements are considered as the core to the right to privacy: Personal autonomy, the freedom to make choices and the right to determine what happens with information about oneself. The judges use slightly different terms for each but essentially stick to the well-known formulations that have been developed by scholars and courts around the world. These aspects, they find, are also reflected throughout Part III of the Constitution of India, which guarantees fundamental rights.

The consequence of this is also that the basis for state interference with privacy (by law or action) will have to meet the standards of the Constitution as interpreted by the Supreme Court over the years. The laws interfering with privacy will have to not only be just, fair and reasonable but also have to be based on the grounds enunciated in Part III. This expands the scope of judicial review of such laws and raises the burden on governments to ensure the constitutionality of laws.The implications of this judgment go far above and beyond just the question of whether the Aadhaar scheme and law are valid. In this judgment itself, the SC has affirmed that sexual orientation is a part of the right to privacy (casting serious doubts over the fate of Section 377 of the IPC) and affirmed the right to choose one's food habits (indirectly approving the Bombay High Court's striking down parts of Maharashtra's beef ban). The principles laid down here will go a long way in striking down some of the most regressive and tyrannical laws on the books.Less clear, however, is this judgment's impact on the Aadhaar (Targeted Delivery of Financial and Other Subsidies, Benefits and Services) Act, 2016 and the larger scheme itself. The court consciously avoids trying to say anything specific about Aadhaar one way or another. It will be left to the subsequent benches which hear multiple challenges to Aadhaar to assess the circumstances and apply the principles suitably. The government will have to make clear to the court the objective with which it has sought to make Aadhaar mandatory in a given case, apart from defending the Aadhaar law itself.What this judgment truly means will become clear in the days to come. If it is to mark a definitive turn in the understanding of fundamental rights, it will have to be applied uncompromisingly by the courts in the future. It would be a travesty if the bold assertions of the judges on privacy, rights, the state and constitutional values were to remain just words on paper, as courts avoid applying it for one reason or another. The burden of giving this landmark judgment full meaning rests with the judiciary itself as it is faced with laws that intrude into the lives of people. One hopes they rise to the challenge again.

Date:25-08-17

We, the private people

With the landmark Right to Privacy verdict, SC expands the individual's fundamental rights, etches firmer boundaries for the state. It also shows an admirable capacity to self-correct

Editorials

On Thursday, the fundamental rights of the Indian citizen got more teeth against arbitrary action of the state. The Supreme Court's ruling that the "Right to Privacy is an integral part of the Right to Life and Personal Liberty guaranteed in Article 21 of the Constitution" will be seen in the light of its immediate context — the Aadhaar case. But the unanimous verdict of the nine-judge bench is much more far-reaching than that."Privacy enables each individual to take crucial decisions which find expression in the human personality. It enables individuals to preserve their beliefs, thoughts, expressions, ideas, ideologies, preferences and choices against societal demands of homogeneity. Privacy is an intrinsic recognition of heterogeneity, of the right of the individual to be different and to stand against the tide of conformity in creating a zone of solitude," the court said. At a time when individuals are being told what to eat, who to love and marry, to respect or oppose, this assertion of the citizen's autonomy sends out an important message to both society and the state.The nine-judge bench was necessitated because while several judgments in the past 40 years have held that there is a common law right to privacy — against other individuals and entities — these rulings did not unequivocally empower the citizen vis-a-vis the state. In 2015, during the litigation on the Aadhaar scheme, Attorney General Mukul Rohatgi had argued that the "legal position regarding the existence of the fundamental right to privacy is doubtful". Drawing on two Supreme Court verdicts — M.P. Sharma vs Satish Chandra, 1954 and Kharak Singh vs State of UP, 1962 — the attorney general had argued that the Constitution does not guarantee a right to privacy. Thursday's judgment is a departure from such narrow — and textual — interpretations of the Constitution."Privacy with its attendant values assures dignity to the individual and it is only when life can be enjoyed with dignity can liberty be of true substance. Privacy ensures the fulfillment of dignity and is a core value which the protection of life and liberty is intended to achieve," it states. At another place, it notes, "The dignity of the individual, equality between human beings and quest for liberty are the foundational pillars of the Indian Constitution".

DEFINING fundamental rights in a manner that expands their scope has been an evolutionary process in most mature democracies. The US, for example, has moved away from mooring its Right to Privacy in the Fourth Amendment — fundamentally about property rights — to situating the right under other guarantees in the country's Constitution. Since the 1970s, its highest court has drawn out the Right to Privacy from the "Concept of Ordered Liberty", the Right to Freedom of Association and the Right Against Self-Incrimination.Thursday's Supreme Court verdict is in the same spirit: "The attempt of the court should be to expand the reach and ambit of the fundamental rights rather than attenuate their meaning and content by process of judicial construction", it says. This articulation should shine the light on future jurisprudence pertaining to fundamental rights.There is another important lesson for future juries — democratic societies require their judiciary to self-correct. Thursday's verdict subjects some past decisions of the Supreme Court to the test of constitutional propriety and annuls the ones found wanting. The ADM Jabalpur v Shivakant Shukla case, in 1976, for example. The court had then ruled that presidential consent was sufficient to annul the right to liberty of a person who was under preventive detention. This 41-year old verdict was critiqued by the court on Thursday as "seriously flawed. Life and personal liberty are inalienable to human existence. These rights are primordial rights. They constitute rights under natural law".

The spirit of self-correction — and commitment to human dignity — are also behind the court's decision to set aside its 2013 verdict that resuscitated Section 377. In 2009, the Delhi High Court had revoked the criminalisation of homosexuality. Criticising its earlier verdict, the court has vindicated the Delhi High Court ruling which held Section 377 to be a denial of the dignity of an individual. Now, the court's remarks will be seen as a long-awaited course correction: "In a democratic Constitution founded on the rule of law, their [minority] rights are as sacred as those conferred on other citizens to protect their freedoms and liberties. Sexual orientation is an essential attribute of privacy. Discrimination against an individual on the basis of sexual orientation is deeply offensive to the dignity and self-worth of the individual".THE court does impose reasonable restrictions on the Right to Privacy. But governments would do well to heed the caveat it sets: "The nature and content of the law which imposes the restriction falls within the zone of reasonableness mandated by Article 14, which is a guarantee against arbitrary state action". A democracy can survive when citizens have an undiluted assurance that the rule of law will protect their rights and liberties against any invasion by the state and that judicial remedies would be available. Thursday's ruling is a landmark in that respect. This verdict owes, in no small measure, to the persistence and diligence of lawyers, activists, academics — the people of India owe them a debt of gratitude.

जनसत्ता

Date:25-08-17

निजता की जीत

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय के नौ सदस्यीय संविधान पीठ ने एक ऐतिहासिक फैसले में निजता के अधिकार को संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार घोषित कर दिया। इसी के साथ इस बारे में जुड़े ढेरों अगर-मगर भी खत्म हो गए हैं। इसका असर भी दूरगामी होगा। मुख्य न्यायाधीश जगदीश सिंह खेहर की अध्यक्षता में गठित संविधान पीठ ने एक स्वर से कहा है कि निजता का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीने के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंतर्भूत हिस्सा है। यह भी गौरतलब है कि गुरुवार को दिए अपने फैसले में पीठ ने शीर्ष न्यायालय के उन दो पुराने फैसलों को खारिज कर दिया, जिनमें निजता को मौलिक अधिकार नहीं माना गया था। यही फैसले निजता के अधिकार की राह में दीवार बन कर खड़े हो जाते थे। एमपी शर्मा मामले में छह जजों ने 1954 में और खड्गसिंह मामले में आठ जजों ने 1962 में फैसला सुनाया था। ताजा फैसले में आधार कार्ड को वित्तीय लेन-देन संबंधी मामलों में अनिवार्य किए जाने के सवाल पर कोई टिप्पणी नहीं की गई है। इस सिलसिले में यह मसला इसलिए बेहद अहम है कि निजता के अधिकार को लेकर बहस ही तब उठी, जब सरकार ने आधार कार्ड को कल्याणकारी सामाजिक योजनाओं के लिए जरूरी कर दिया। यहां तक कि आय कर रिटर्न भरने, बैंकों में खाता खोलने, ऋण लेने, पेंशन पाने और वित्तीय लेन-देन में आधार कार्ड को अनिवार्य बना दिया।याचिकाकर्ताओं ने आधार योजना को निजता के अधिकार में दखलंदाजी बताते हुए इसकी अनिवार्यता खत्म करने की मांग की थी। तभी यह सवाल भी उठा कि निजता का अधिकार मौलिक अधिकार है भी या नहीं। मामला पहले तीन जजों के खंडपीठ के पास गया। फिर इसकी सुनवाई के लिए पांच जजों के खंडपीठ का और अंत में 18 जुलाई को नौ सदस्यीय संविधान पीठ का गठन हुआ। इस पीठ ने नियमित सुनवाई करके पिछले 2 अगस्त को निर्णय सुरक्षित रख लिया था। सुनवाई के दौरान कई रोचक दलील भी दी गईं। जैसे कि पूर्व अटॉर्नी जनरल (महान्यायवादी) मुकुल रोहतगी ने यह तक कह दिया था कि नागरिक के शरीर पर स्वयं उसका नहीं, राज्य का अधिकार है। इस दलील

को लेकर अदालत के बाहर भी काफी चर्चा हुई। संविधान पीठ में भी, अंतिम फैसला सुनाने से पहले, कई बार दुविधा देखी गई। निर्णय सुरक्षित करते समय पीठ ने खुद यह माना कि सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में निजता की सुरक्षा का सिद्धांत एक हारी हुई लड़ाई है।अब जबकि फैसला सुना दिया गया है, तब भी कई सवाल हैं जो हवा में तैर रहे हैं और विधि विशेषज्ञ इनकी व्याख्या में लगे हैं। कुछ विशेषज्ञों और कई विपक्षी राजनीतिकों ने कहा कि इस फैसले से सरकार की 'निगरानी रणनीति' को झटका लगा है। अब कोई भी नागरिक अपना आधार कार्ड बनवाने से इनकार भी कर सकता है, क्योंकि सबसिडी का लाभ पाने के लिए आधार जरूरी नहीं है। जबकि विधिमंत्री रविशंकर प्रसाद ने फैसले को अपने पक्ष में बताया है। उन्होंने कहा कि न्यायालय ने साफ कहा है कि 'निजता वाजिब प्रतिबंधों के साथ ही मौलिक अधिकार है।' समझा जाता है कि इस फैसले के बावजूद अभी सरकार और आधार कार्ड को अनिवार्य करने के विरोधियों के बीच रस्साकशी जारी रह सकती है। क्योंकि, सरकार के अपने तर्क हैं और उसका कहना है कि जनकल्याण और जन सुरक्षा के लिए आधार जरूरी है। यानी एक मसला तो हल हो गया, लेकिन इससे जुड़ा पहला मसला अब भी कई 'किंतुओं-परंतुओं' के घेरे में है।

Date:25-08-17

आरक्षण का आधार

संपादकीय

बुधवार को केंद्र ने ओबीसी यानी पिछड़े वर्ग के आरक्षण की बाबत दो खास फैसले किए। एक, यह कि ओबीसी आरक्षण के लिए क्रीमीलेयर की सीमा बढ़ा कर आठ लाख रुपए कर दी। अभी तक यह छह लाख रुपए थी। क्रीमी लेयर में बढ़ोतरी कोई नई बात नहीं है। जब से क्रीमी लेयर का प्रावधान लागू हुआ तब से यानी पिछले चौबीस सालों में यह चौथी बढ़ोतरी है। कांग्रेस ने क्रीमी लेयर की सीमा बढ़ाए जाने की आलोचना की है, यह कहते हुए कि इससे पिछड़े वर्ग के गरीबों को नुकसान होगा। पर यह दलील विपक्ष में होने के नाते एक रस्म अदायगी से ज्यादा कुछ नहीं है। क्रीमी लेयर यानी ओबीसी आरक्षण की आय सीमा में पिछली बढ़ोतरी कांग्रेस या यूपीए सरकार ने ही की थी। अब फिर क्रीमी लेयर में बढ़ोतरी की गई है, तो यह अब तक चले आते सिलसिले के अनुरूप ही है। स्वाभाविक ही यह माना जाता है कि क्रीमी लेयर बढ़ने से आरक्षण पाने के हकदार अभ्यर्थियों का दायरा बढ़ जाता है। पर क्या वजह है कि केंद्र में ओबीसी आरक्षण लागू होने के सत्ताईस साल बाद भी केंद्र की नौकरियों में पिछड़ों की हिस्सेदारी केवल बारह फीसद है, इसकी पड़ताल होनी चाहिए।बुधवार को ही सरकार ने घोषणा की कि ओबीसी कोटे के भीतर कोटा तय करने के लिए जल्दी एक आयोग गठित किया जाएगा, जो बारह महीनों में अपनी रिपोर्ट देगा। राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा देने की पहल के बाद ओबीसी आरक्षण की बाबत यह एक और महत्त्वपूर्ण फैसला है, जिससे ओबीसी आरक्षण का स्वरूप तो प्रभावित होगा ही, राजनीति और अगले लोकसभा चुनाव पर भी इसका असर पड़ सकता है। यह शिकायत आम है कि आरक्षण का लाभ संबंधित आरक्षित वर्ग के तहत आने वाले सभी लोगों को समान रूप से नहीं मिल पा रहा है, अधिकांश लाभ उस वर्ग की अपेक्षया समर्थ जातियां ही पाती रही हैं। इसी शिकायत के मद्देनजर और समान अवसर के तकाजे से सुप्रीम कोर्ट ने 1992 में ही उप-श्रेणी की व्यवस्था करने को कहा था। 2011 में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग और उसके कोई साल भर बाद एक संसदीय समिति ने भी इसी आशय की सिफारिश की थी। आयोग गठित करने की घोषणा कर सरकार ने उसी पर अमल करने का इरादा जताया है। फिलहाल यह साफ नहीं है कि उपश्रेणियां कितनी होंगी।ओबीसी की अधिकतर जातियां चाहेंगी कि उन्हें अति पिछड़े की श्रेणी में रखा जाए, ताकि उन्हें बराबरी के या प्रबल प्रतिद्वंद्वियों का सामना न करना पड़े। इसलिए संभव है कि जिनमें आयोग के गठन की घोषणा से उम्मीद जगी होगी उनमें से भी कुछ लोगों को उसकी सिफारिशें नागवार गुजरें। आयोग किन आंकड़ों के आधार पर उप-श्रेणियां बनाएगा? जातिवार जनगणना के आंकड़े सरकार ने जारी नहीं किए हैं। क्या ये आंकड़े आयोग को मुहैया कराए जाएंगे? या कोई और अध्ययन आधार बनेगा? यह सवाल भी उठेगा कि उपश्रेणी अनुसूचित जाति के

आरक्षण में क्यों नहीं, जबकि आरक्षण का लाभ सिकुड़े होने की शिकायत वहां भी है। ओबीसी आरक्षण की नई मागें जो मराठा, कापु, पटेल, जाट जैसे समुदाय कर रहे हैं वे तो आयोग के विचार के दायरे में भी नहीं हैं। लिहाजा, आरक्षण संबंधी विवाद खत्म हो जाएंगे, यह मान लेना नादानी होगी, बल्कि कुछ मायनों में नए विवाद उभर सकते हैं।

THE HINDU

Date:25-08-17

Caste and class

Sub-categorisation of OBCs feeds the BJP's recent attempts at caste-based mobilisation

There are inequalities and then there are inequalities within unequal entities. That reservation in jobs and education did address socio-economic disparities in India to some degree is true. But, equally, the benefits of reservation have not been distributed equitably, and large segments of the weaker sections and backward classes continue to have no access to quality education or meaningful employment. The relatively rich and dominant sections among the backward castes have tended to take up a disproportionately larger share of the reservation pie.

The introduction of the concept of **'creamy layer'** to isolate the well-off among those eligible for reservation was initially perceived as an attempt to limit the benefits of reservation, and to politically divide the beneficiaries of reservation. But, properly implemented, it could have had the effect of allowing a more equitable spread of the benefits of reservation. The Union Cabinet's decision to set up a commission to examine the issue of **sub-categorisation of the Other Backward Classes** speaks to the long years of failure in effectively preventing large sections of the creamy layer from taking advantage of the quota system to the detriment of the poorer sections among their own caste groups. In effect, the Union government is now seeking to ensure a more equitable distribution of reservation benefits by further differentiating caste groups coming under backward classes on the basis of their levels of social and economic backwardness.

If the categorisation of the creamy layer had been done consistently and uniformly, there would not have been any felt need to differentiate among the caste groups. The decision on sub-categorisation came on the same day the Cabinet decided to raise the ceiling for deciding who remains outside the creamy layer to those earning rs 8 lakh annually, an increase of rs 2 lakh. This is at cross-purposes with the move toward sub-categorisation, allowing as it does those with higher earnings to enjoy reservation benefits. The reservation pie is limited, and no group, whether rich or poor, dominant or subservient, can hope to gain except at the expense of another socio-economic category.Vote-bank politics has a lot to do with the prioritising of caste-based categorisation over income-based differentiation to identify reservation beneficiaries. Political mobilisation on the basis of caste is far easier than on the basis of income, and the BJP is clearly trying to splinter the vote banks of the Samajwadi Party and the Rashtriya Janata Dal in Uttar Pradesh and Bihar. The effort is to make other caste groups see dominant castes such as Yadavs as competitors for education and employment. Evidently, this kind of political mobilisation is not at odds with the BJP's greater stratagem of Hindu religious consolidation. But it may still result in leaving out the

truly deserving from reservation benefits.

Date:25-08-17

Citizen vs State

The unanimous verdict on privacy is a restatement of core constitutional principles

Editorials

In a rare unanimous verdict pronounced by nine judges, the Supreme Court has ruled that **privacy is a fundamental right** that requires constitutional protection. It was always known or assumed to be a common law right. Occasionally, and somewhat grudgingly, it was recognised in some verdicts as a fundamental right. In concluding that "the right to be left alone" is an inalienable part of being human, the court has restated a fundamental principle, namely that some rights are natural and inherent; constitutions only recognise them and make them explicit. This restatement of first principles became necessary mainly due to a strange and perverse argument by the Union government in the course of the hearings on the validity of its Aadhaar-based unique identity scheme that privacy is not a fundamental right. The fact that all the judges unanimously came down on this argument shows how much the government misunderstood the constitutional underpinnings of privacy as a value in itself and as an ineluctable facet of human dignity. The government argued that privacy is "so amorphous as to defy description", that it is needless to call it a fundamental right as it is one in common law, and that it has been given statutory protection in different forms. There was even a suggestion that privacy is an imported value and that it is elitist. All these arguments fell by the wayside.The outcome was not entirely unexpected. Not many would have seriously believed a constitutional court would rule that privacy is not a cherished right in a democracy. What implications the ruling would have on state policy and citizens' rights will be the core issues in future. A welcome aspect of the judgment is that it makes it clear that sexual orientation is part of privacy and constitutionally protected, and that the 2014 verdict upholding Section 377 of the Indian Penal Code is flawed. This opens up the case for a much-needed reconsideration. As for Aadhaar, it is pertinent to note that the judges have referred to the restrictions and limitations that privacy would be subject to. The test to decide the validity of any such restriction is that it is reasonable, based on fair procedure and free from arbitrariness or selective targeting or profiling. It can also be based on compelling state interest. This is where a cautionary note is in order. Courts exercising writ jurisdiction should be cautious about the nature of the relief they grant based on wide and open-ended claims of breach of privacy. The verdict has advanced and revivified core constitutional principles in an era in which privacy is pitted against state interest. Somehow, privacy as a value finds itself at loggerheads with notions of national security, the needs of a knowledge society and even socio-economic policy. Hopefully, this judgment will set many such concerns at rest and bring about a more equitable relationship between citizen and state.